बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।।१६।।

बहिः=बाहर; **अन्तः**=भीतर; **च**=भी; **भूतानाम्**=जीवों के; **अचरम् चरम्**=स्थावर और जंगम; **एव**=भी; **च**=तथा; **सूक्ष्मत्वात्**=सूक्ष्म होने से; **तत्**=वह; **अविज्ञेयम्**=जानने में नहीं आता; **दूरस्थम्**=दूर; **च**=तथा; **अन्तिके च**=अति समीप में भी; **तत्**=वही है।

अनुवाद

परमसत्य चराचर में, बाहर-भीतर सर्वत्र परिपूर्ण है; सूक्ष्म होने के कारण वह प्राकृत इन्द्रियों के जानने-देखने में नहीं आता; परन्तु दूर होने के साथ ही वह सबके समीप भी है।।१६।।

तात्पर्य

वैदिक शास्त्रों से हमें विदित है कि परमपुरुष नारायण जीवमात्र के बाहर-भीतर विद्यमान हैं; वैकुण्ठ-जगत् में ही नहीं, इस प्राकृत-जगत् में भी हैं। सुदूर होते हुए भी वे हमारे समीप हैं। ये सभी वैदिक वाक्य हैं। **आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।** वे निरन्तर अलौकिक आनन्द में निमग्न रहते हैं; अतएव अपने पूर्ण ऐश्वर्यों का वे किस प्रकार से उपभोग करते हैं, हम यह नहीं समझ सकते। इन्हें प्राकृत इन्द्रियों से देखा अथवा समझा नहीं जा सकता। वेदों में तो यहाँ तक कहा है कि हमारा चित्त और हमारी इन्द्रियाँ उन्हें समझने में प्रवृत्त ही नहीं हो सकतीं। किन्तु जिसने भक्तियोग से युक्त होकर कृष्णभावना के अभ्यास द्वारा अपने चित्त और इन्द्रियों का परिशोधन कर लिया है, उसे उनका नित्य-दर्शन सुलभ हो जाता है। 'ब्रह्मसंहिता' का प्रमाण है कि जिस भक्त में भगवत्प्रेम का उदय हो जाता है, वह उनका दर्शन नित्य-निरन्तर कर सकता है। भगवद्गीता (११.५४) भी कहती है कि उन्हें एकमात्र भक्तियोग से ही देखा और जाना जा सकता है—**भक्त्या त्वनन्यया शक्यः।**

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च।।१७।।

अविभक्तम्=विभागरहित एकरूप से; **च**=तथा; **भूतेषु**=प्राणीमात्र में; **विभक्तम् इव**=पृथक्-पृथक् की भाँति; **च**=भी; **स्थितम्**=स्थित है; **भूतभर्तृ**=सम्पूर्ण जीवों का धारण-पोषण करने वाला; **च**=तथा; **तत्**=उसे; **ज्ञेयम्**=जानना चाहिए; **ग्रसिष्णु**=संहार करने वाला; **प्रभविष्णु च**=सब का जन्मदाता भी।

अनुवाद

अलग-अलग जीवों में पृथक्-पृथक् रूप से स्थित लगता हुआ भी परमात्मा वास्तव में नित्य विभागरहित है। उसे ही सम्पूर्ण प्राणियों का जन्मदाता, पालक और संहार करने वाला जानना चाहिए।।१७।।